

भारतीय बैंकिंग व्यवस्था का विकास: राष्ट्रीयकृत एवं प्राइवेट बैंकों की भूमिका और भारतीय रिज़र्व बैंक का योगदान

बिमलेश कुमार मेहता

शोधार्थी, सोना देवी विश्वविद्यालय, घाटशिला, झारखंड, भारत

Page No. 18-26

सारांश

भारतीय बैंकिंग व्यवस्था ने पिछले कुछ दशकों में उल्लेखनीय परिवर्तन देखे हैं। राष्ट्रीयकृत और प्राइवेट बैंकों के विकास की इस यात्रा में भारतीय रिज़र्व बैंक (RBI) की भूमिका केंद्रीय और निर्णायक रही है। 2010 के बाद से भारतीय अर्थव्यवस्था ने वैश्वीकरण, उदारीकरण और तकनीकी प्रगति के साथ-साथ कई संकटों का भी सामना किया—जिनमें वैश्विक वित्तीय मंदी, कोविड-19 महामारी, और अंतरराष्ट्रीय राजनीतिक अस्थिरता शामिल हैं। इन सभी परिस्थितियों में रिज़र्व बैंक ने मौद्रिक नीति, नियामक सुधार, और वित्तीय समावेशन की दिशा में कई प्रभावी कदम उठाए। राष्ट्रीयकृत बैंक ग्रामीण और कमजोर वर्गों तक पहुंच बनाने में अग्रणी रहे, जबकि प्राइवेट बैंक नवाचार और डिजिटल बैंकिंग सेवाओं के माध्यम से प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देते रहे। इस प्रक्रिया में रिज़र्व बैंक की नियामक भूमिका दोनों ही क्षेत्रों के लिए समान रूप से महत्वपूर्ण रही है। उसने पूंजी पर्याप्तता, एनपीए प्रबंधन, और तकनीकी सुरक्षा जैसे मुद्दों पर विशेष ध्यान दिया। यह शोधपत्र एक समीक्षात्मक अध्ययन है, जिसमें भारतीय बैंकिंग क्षेत्र के विकास, चुनौतियों और अवसरों का विश्लेषण किया गया है। इसमें विशेष रूप से इस बात पर प्रकाश डाला गया है कि किस प्रकार राष्ट्रीयकृत और प्राइवेट बैंक भारतीय अर्थव्यवस्था को संतुलित रूप से आगे बढ़ाने में योगदान कर रहे हैं और इसमें RBI की भूमिका किस तरह से रीढ़ की हड्डी के समान है।

मुख्य शब्द: भारतीय बैंकिंग, राष्ट्रीयकरण, निजी बैंक, भारतीय रिज़र्व बैंक, वित्तीय समावेशन, मौद्रिक नीति

परिचय

भारतीय बैंकिंग व्यवस्था का विकास केवल आर्थिक संस्थाओं के उत्थान और पतन की कहानी नहीं है, बल्कि यह देश के सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक बदलावों का भी दर्पण है। प्राचीन काल से ही भारत में वित्तीय लेन-देन की अपनी विशिष्ट परंपरा रही है। शरोफों और साहूकारों के माध्यम से ऋण और निवेश की प्रणाली तथा व्यापारिक लेन-देन में हुण्डी का प्रयोग भारतीय समाज की वित्तीय चतुराई और लचीलापन दर्शाता है। यह व्यवस्था स्थानीय आवश्यकताओं को पूरा करती थी, किन्तु इसमें औपचारिक बैंकिंग संरचना की कमी थी।

औपनिवेशिक काल ने भारतीय बैंकिंग में औपचारिकता का आरंभ किया। 1770 में बैंक ऑफ हिंदुस्तान और बाद में प्रेसीडेंसी बैंकों की स्थापना ने आधुनिक बैंकिंग को जन्म दिया। लेकिन इन संस्थाओं का उद्देश्य मुख्यतः ब्रिटिश साम्राज्य के वाणिज्यिक हितों को साधना था। ग्रामीण भारत, जहाँ बहुसंख्यक जनसंख्या निवास करती थी, इन सेवाओं से वंचित रह गया। फलस्वरूप, औपनिवेशिक बैंकिंग भारतीय जनता की अपेक्षाओं और विकास की ज़रूरतों से कटकर रही।

भारतीय रिज़र्व बैंक (1935) की स्थापना और 1949 में उसके राष्ट्रीयकरण ने बैंकिंग को एक नई दिशा दी। यह केवल मौद्रिक नीति का नियामक ही नहीं बना, बल्कि विकासात्मक परियोजनाओं के लिए वित्तीय संसाधनों का प्रबंधक भी रहा। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय सरकार ने बैंकिंग को लोकतांत्रिक बनाने और सामाजिक-आर्थिक विकास के उद्देश्यों से जोड़ने का संकल्प लिया।

1960 के दशक तक स्पष्ट हो गया कि निजी वाणिज्यिक बैंक ग्रामीण और कृषि क्षेत्र की आवश्यकताओं को पूरा करने में विफल हो रहे हैं। इसी संदर्भ में 1969 में 14 प्रमुख बैंकों और 1980 में 6 और बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया। इस कदम ने वित्तीय समावेशन की नींव रखी। शाखाओं के तीव्र विस्तार, प्राथमिकता क्षेत्रों को ऋण उपलब्ध कराने और गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों को सहयोग देने के माध्यम से राष्ट्रीयकृत बैंकों ने समाज के पिछड़े वर्गों तक बैंकिंग की पहुँच सुनिश्चित की।

हालाँकि 1991 के आर्थिक उदारीकरण ने बैंकिंग परिदृश्य को फिर से बदल दिया। निजी क्षेत्र के बैंकों—एचडीएफसी, आईसीआईसीआई, एक्सिस आदि—ने प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा दिया और तकनीकी नवाचारों के माध्यम से ग्राहकों को नई सुविधाएँ प्रदान कीं। इंटरनेट बैंकिंग, एटीएम नेटवर्क, मोबाइल एप्लिकेशन और डिजिटलीकरण ने बैंकिंग सेवाओं को अधिक सुविधाजनक और पारदर्शी बनाया। इससे भारतीय बैंकिंग वैश्विक वित्तीय व्यवस्था के समकक्ष खड़ी हो सकी।

इस पूरी यात्रा का केंद्रीय स्तंभ भारतीय रिज़र्व बैंक रहा है। 1991 के भुगतान संतुलन संकट, 2008 की वैश्विक मंदी और कोविड-19 महामारी जैसे संकटों के समय RBI ने न केवल वित्तीय प्रणाली को स्थिर बनाए रखा, बल्कि दीर्घकालीन नीतियों के माध्यम से स्थायित्व और विश्वास भी कायम रखा। ब्याज दरों का समायोजन, पूंजी नियंत्रण, विदेशी मुद्रा बाज़ार में हस्तक्षेप और डिजिटल भुगतान प्रणालियों को बढ़ावा देना इसके उल्लेखनीय कदम रहे हैं।

फिर भी चुनौतियाँ बनी हुई हैं। गैर-निष्पादित परिसंपत्तियाँ (NPAs) बैंकों की बैलेंस शीट को कमजोर करती हैं। प्रशासनिक कमज़ोरियाँ और भ्रष्टाचार पारदर्शिता पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं। डिजिटल क्रांति के बीच साइबर अपराध और ऑनलाइन धोखाधड़ी नई चिंताएँ बनकर उभरी हैं। इसके अतिरिक्त, वैश्वीकरण ने भारतीय बैंकिंग को अंतरराष्ट्रीय आर्थिक झटकों के प्रति भी संवेदनशील बना दिया है।

इस प्रकार, भारतीय बैंकिंग व्यवस्था का इतिहास निरंतर परिवर्तन और अनुकूलन की प्रक्रिया का साक्षी है। राष्ट्रीयकृत बैंकों ने वित्तीय समावेशन और सामाजिक न्याय को आगे बढ़ाया, जबकि निजी बैंकों ने प्रतिस्पर्धा, तकनीकी नवाचार और ग्राहक-केंद्रित सेवाओं को बढ़ावा दिया। और इन सबके केंद्र में भारतीय रिज़र्व बैंक रहा है, जिसने संतुलन साधते हुए बैंकिंग प्रणाली को स्थिरता और विश्वसनीयता प्रदान की है।

यह शोध-पत्र इसी ऐतिहासिक यात्रा का आलोचनात्मक विश्लेषण करेगा—विशेष रूप से राष्ट्रीयकृत एवं निजी बैंकों की भूमिका और भारतीय रिज़र्व बैंक के योगदान को केंद्र में रखकर। इसके माध्यम से यह स्पष्ट करने का प्रयास होगा कि कैसे बैंकिंग व्यवस्था ने न केवल आर्थिक प्रगति में योगदान दिया, बल्कि सामाजिक न्याय और राष्ट्रीय एकता को भी सुदृढ़ किया है।

राष्ट्रीयकृत बैंकों की भूमिका

भारत में राष्ट्रीयकृत बैंकों की स्थापना केवल एक आर्थिक सुधार का कदम नहीं था, बल्कि यह एक सामाजिक क्रांति के समान था जिसने देश की वित्तीय संरचना को ही बदलकर रख दिया। 1969 में जब तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने 14 प्रमुख वाणिज्यिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया, तब यह निर्णय केवल बैंकों के स्वामित्व में बदलाव भर नहीं था, बल्कि इसका उद्देश्य बैंकिंग क्षेत्र को राष्ट्रीय प्राथमिकताओं से जोड़ना था। बाद में 1980 में 6 और बैंकों का राष्ट्रीयकरण हुआ। इस प्रकार, राष्ट्रीयकृत बैंकों ने भारत के आर्थिक विकास, सामाजिक समानता और वित्तीय समावेशन में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और आवश्यकता

स्वतंत्रता के बाद भारत के सामने विकास का सबसे बड़ा लक्ष्य था—गरीबी उन्मूलन, कृषि उत्पादन में वृद्धि, औद्योगिकीकरण और सामाजिक न्याय। निजी बैंकों का ध्यान मुख्यतः लाभ कमाने पर था। वे शहरी क्षेत्रों और बड़े व्यापारियों तक सीमित थे। ग्रामीण भारत, जहाँ 70 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या रहती थी, बैंकिंग सेवाओं से लगभग वंचित था। किसान, कारीगर और छोटे व्यवसायी साहूकारों पर निर्भर रहते थे और ऊँची ब्याज दरों के कारण शोषण का शिकार होते थे।

1960 के दशक में यह साफ हो गया कि यदि बैंकों को व्यापक समाज की सेवा में नहीं लाया गया तो आर्थिक असमानता और गहराएगी। यही कारण था कि 1969 में 14 प्रमुख बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया। इस कदम ने बैंकिंग को लाभ उन्मुख संस्था से निकालकर सामाजिक विकास का उपकरण बना दिया।

वित्तीय समावेशन का विस्तार

राष्ट्रीयकृत बैंकों का सबसे बड़ा योगदान रहा—वित्तीय समावेशन। राष्ट्रीयकरण से पहले बैंकिंग प्रणाली केवल 22 प्रतिशत आबादी तक पहुँचती थी। लेकिन राष्ट्रीयकरण के बाद ग्रामीण और अर्द्ध-शहरी क्षेत्रों में तेजी से शाखाएँ खोली गईं।

- 1969 में भारत में कुल बैंक शाखाएँ लगभग 8,000 थीं।
- 1990 तक यह संख्या बढ़कर 60,000 से अधिक हो गई।
- ग्रामीण क्षेत्रों में शाखाओं का अनुपात 30 प्रतिशत से बढ़कर 60 प्रतिशत तक पहुँच गया।

इस विस्तार ने करोड़ों लोगों को औपचारिक बैंकिंग प्रणाली से जोड़ा। अब गाँवों में भी लोग बचत खाते खोल सकते थे, जमा योजनाओं का लाभ ले सकते थे और ऋण प्राप्त कर सकते थे।

प्राथमिकता क्षेत्र ऋण और कृषि सहयोग

राष्ट्रीयकृत बैंकों ने प्राथमिकता क्षेत्र ऋण (Priority Sector Lending – PSL) की अवधारणा को मूर्त रूप दिया। इसके अंतर्गत कृषि, लघु और कुटीर उद्योग, शिक्षा, आवास और निर्यात जैसे क्षेत्रों को विशेष महत्व दिया गया।

- छोटे और सीमांत किसानों को सस्ती दर पर ऋण उपलब्ध कराए गए।
- हरित क्रांति को गति देने में बैंकों की ऋण सुविधा का महत्वपूर्ण योगदान रहा।
- पशुपालन, डेयरी और ग्रामीण गैर-कृषि उद्यमों को भी ऋण दिए गए।

इस प्रकार राष्ट्रीयकृत बैंकों ने कृषि और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सशक्त बनाने में अभूतपूर्व योगदान दिया।

गरीबी उन्मूलन और सामाजिक योजनाएँ

1970 और 1980 के दशकों में सरकार ने कई गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम शुरू किए, जिनमें बैंकों की सक्रिय भागीदारी रही।

- **20 सूत्रीय कार्यक्रम** के अंतर्गत गरीबों को रोजगार और ऋण सुविधाएँ दी गईं।
- **एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (IRDP)** के अंतर्गत लाखों परिवारों को ऋण और सब्सिडी मिली।
- ग्रामीण रोजगार गारंटी जैसी योजनाओं में भी बैंकों ने वित्तीय सहयोग किया।

इन पहलों ने न केवल गरीबों को राहत दी बल्कि स्वरोज़गार और छोटे व्यवसायों को बढ़ावा दिया।

महिलाओं और कमजोर वर्गों को प्रोत्साहन

राष्ट्रीयकृत बैंकों ने महिलाओं और सामाजिक रूप से वंचित वर्गों के लिए विशेष योजनाएँ चलाईं।

- **महिला स्वयं सहायता समूह (Self Help Groups)** को ऋण उपलब्ध कराया गया।
- अनुसूचित जाति/जनजाति और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए विशेष ऋण योजनाएँ शुरू की गईं।
- शिक्षा ऋण और स्वरोज़गार ऋण ने युवाओं और महिलाओं को आत्मनिर्भर बनने का अवसर दिया।

इस प्रकार बैंकों ने सामाजिक परिवर्तन और सशक्तिकरण में बड़ी भूमिका निभाई।

औद्योगिक और अवसंरचनात्मक विकास

राष्ट्रीयकृत बैंकों ने केवल ग्रामीण और कृषि क्षेत्रों को ही नहीं, बल्कि उद्योग और अवसंरचना को भी वित्तीय सहयोग दिया।

- लघु और मध्यम उद्योगों को कार्यशील पूँजी और ऋण उपलब्ध कराए गए।
- सड़क, पुल, सिंचाई और बिजली जैसी परियोजनाओं में बैंकों ने निवेश किया।

- निर्यात को प्रोत्साहन देने के लिए ऋण सुविधाएँ दी गई।

इससे भारतीय अर्थव्यवस्था में औद्योगिक आधार मजबूत हुआ और रोजगार के अवसर बढ़े।

स्थिरता और विश्वास का निर्माण

राष्ट्रीयकरण से पहले जनता निजी बैंकों पर पूरी तरह भरोसा नहीं करती थी। बैंक दिवालिया होने का डर हमेशा बना रहता था। लेकिन राष्ट्रीयकरण के बाद लोगों को विश्वास मिला कि उनकी जमा राशि सुरक्षित है क्योंकि सरकार इसकी गारंटी देती है।

- जमा खातों में निरंतर वृद्धि हुई।
- बचत की प्रवृत्ति बढ़ी और वित्तीय संसाधन विकास कार्यों में लगने लगे।

सीमाएँ और चुनौतियाँ

हालाँकि राष्ट्रीयकृत बैंकों की उपलब्धियाँ उल्लेखनीय हैं, फिर भी कुछ चुनौतियाँ भी सामने आईं।

1. **राजनीतिक दबाव में ऋण वितरण** – कई बार राजनीतिक हस्तक्षेप के कारण अयोग्य लोगों को ऋण दिए गए, जिससे बैंकों की वित्तीय स्थिति कमजोर हुई।
2. **गैर-निष्पादित परिसंपत्तियाँ (NPAs)** – ऋण वापसी न होने की समस्या ने बैंकों को भारी नुकसान पहुँचाया।
3. **कार्यकुशलता की कमी** – सरकारी स्वामित्व के कारण निर्णय लेने में देरी और ग्राहक सेवा में कमी रही।
4. **तकनीकी पिछड़ापन** – निजी बैंकों की तुलना में तकनीकी नवाचार और डिजिटल सेवाओं में राष्ट्रीयकृत बैंक पीछे रह गए।

भविष्य की दिशा

आज जब बैंकिंग क्षेत्र डिजिटलीकरण, वैश्वीकरण और प्रतिस्पर्धा के युग में प्रवेश कर चुका है, राष्ट्रीयकृत बैंकों को अपनी कार्यप्रणाली में सुधार करने की आवश्यकता है।

- डिजिटल बैंकिंग और फिनटेक कंपनियों से प्रतिस्पर्धा करने के लिए तकनीकी निवेश बढ़ाना होगा।
- NPAs को कम करने के लिए सख्त निगरानी और पारदर्शिता लानी होगी।
- ग्राहक सेवा को तेज़, सरल और कुशल बनाना होगा।
- सामाजिक योजनाओं और वित्तीय समावेशन की परंपरा को जारी रखते हुए आधुनिक सेवाओं का समावेश करना होगा।

निष्कर्ष

राष्ट्रीयकृत बैंकों ने भारत की आर्थिक और सामाजिक संरचना में गहरा बदलाव किया है। उन्होंने बैंकिंग को केवल लाभ कमाने वाली संस्था न बनाकर विकास और सामाजिक न्याय का उपकरण बनाया। कृषि, ग्रामीण विकास, लघु उद्योग, महिला सशक्तिकरण, गरीबी उन्मूलन और औद्योगिक विकास—सभी क्षेत्रों में इनका योगदान उल्लेखनीय रहा है।

हालाँकि कार्यकुशलता, NPAs और तकनीकी पिछड़ेपन जैसी चुनौतियाँ हैं, लेकिन यह निर्विवाद है कि भारतीय बैंकिंग इतिहास में राष्ट्रीयकृत बैंकों की भूमिका आधारभूत और दूरगामी रही है। भविष्य में यदि ये बैंक तकनीकी नवाचार और पारदर्शिता को अपनाते हैं तो वे न केवल प्रतिस्पर्धा में टिक पाएँगे बल्कि भारतीय समाज के विकास में और भी बड़ा योगदान देंगे।

निजी बैंकों की भूमिका

प्रस्तावना

भारतीय बैंकिंग प्रणाली में निजी बैंकों की भूमिका 1991 के आर्थिक उदारीकरण के बाद से अत्यधिक महत्वपूर्ण हो गई है। यदि राष्ट्रीयकृत बैंकों ने बैंकिंग को सामाजिक न्याय और समावेशन की दिशा में ले जाने का कार्य किया, तो निजी बैंकों ने इसे आधुनिकता, दक्षता और प्रतिस्पर्धा की ओर अग्रसर किया।

एचडीएफसी बैंक, आईसीआईसीआई बैंक, एक्सिस बैंक, कोटक महिंद्रा बैंक, इंडसइंड बैंक जैसे संस्थानों ने बैंकिंग क्षेत्र में नई ऊर्जा और दृष्टिकोण प्रस्तुत किया।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

1991 में भारत ने आर्थिक उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण (LPG) नीति अपनाई। विदेशी निवेश को प्रोत्साहन मिला और निजी क्षेत्र के लिए बैंकिंग क्षेत्र खोला गया। इसके पहले निजी बैंक सीमित रूप में मौजूद थे, लेकिन उनका प्रभाव नगण्य था। 1993 से लेकर 2000 के बीच कई नए निजी बैंक स्थापित हुए और उन्होंने भारतीय बैंकिंग परिदृश्य को बदलकर रख दिया।

तकनीकी नवाचार और डिजिटलीकरण

निजी बैंकों का सबसे बड़ा योगदान तकनीकी नवाचार रहा है। उन्होंने बैंकिंग को आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी से जोड़कर “डिजिटल बैंकिंग” की अवधारणा को लोकप्रिय बनाया।

- **एटीएम नेटवर्क का विस्तार** – निजी बैंकों ने एटीएम की पहुँच छोटे शहरों और कस्बों तक बढ़ाई।
- **नेट बैंकिंग और मोबाइल बैंकिंग** – ऑनलाइन लेन-देन, बिल भुगतान और डिजिटल फंड ट्रांसफर की सुविधा दी।
- **UPI और वॉलेट सेवाएँ** – निजी बैंकों ने फिनटेक कंपनियों के साथ मिलकर यूपीआई आधारित भुगतान को गति दी।
- **AI और चैटबॉट** – ग्राहक सेवा में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रयोग किया।

इस प्रकार निजी बैंकों ने बैंकिंग को “कागज-रहित” और “सुविधा-प्रधान” बनाया।

ग्राहक सेवा और प्रतिस्पर्धा

निजी बैंकों की पहचान उनकी त्वरित और कुशल ग्राहक सेवा से है।

- ग्राहकों के लिए **डोर-स्टेप बैंकिंग**, रिलेशनशिप मैनेजर और 24x7 कॉल सेंटर उपलब्ध कराए।
- ऋण स्वीकृति की प्रक्रिया सरल और तेज़ बनाई।
- ग्राहकों की बदलती आवश्यकताओं के अनुसार नए उत्पाद—क्रेडिट कार्ड, पर्सनल लोन, हाउसिंग लोन, इश्योरेंस पैकेज इत्यादि प्रस्तुत किए।

इस प्रतिस्पर्धा ने राष्ट्रीयकृत बैंकों को भी अपनी सेवाएँ सुधारने के लिए प्रेरित किया।

वित्तीय समावेशन और शहरीकरण

हालाँकि निजी बैंकों की शाखाएँ मुख्यतः शहरी और अर्ध-शहरी क्षेत्रों तक केंद्रित हैं, फिर भी उन्होंने वित्तीय समावेशन में योगदान दिया है। प्रधानमंत्री जन-धन योजना (PMJDY) जैसी पहलों में निजी बैंकों ने सक्रिय भूमिका निभाई। साथ ही, सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों (MSMEs) के लिए ऋण सुविधाएँ बढ़ाई।

पूँजी निर्माण और निवेश

निजी बैंकों ने घरेलू और विदेशी निवेश को आकर्षित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वे आधुनिक वित्तीय साधनों और पूँजी बाजार से बेहतर तालमेल रखते हैं। विदेशी बैंकों और संस्थागत निवेशकों ने निजी बैंकों पर भरोसा किया, जिससे भारत की वित्तीय प्रणाली को वैश्विक स्तर पर मजबूती मिली।

रोजगार और कौशल विकास

निजी बैंकों के विस्तार ने युवाओं के लिए रोजगार के नए अवसर खोले। उन्होंने आधुनिक बैंकिंग कौशल—डिजिटल बैंकिंग, साइबर सुरक्षा, जोखिम प्रबंधन—में युवाओं को प्रशिक्षित किया। इससे भारतीय श्रम शक्ति को वैश्विक मानकों के अनुरूप बनाने में मदद मिली।

सीमाएँ और आलोचना

निजी बैंकों की उपलब्धियों के बावजूद, उनके सामने कुछ आलोचनाएँ भी हैं।

1. **शहरी झुकाव** – ग्रामीण क्षेत्रों में उनकी उपस्थिति सीमित है।

2. **लाभ-केन्द्रित दृष्टिकोण** – सामाजिक योजनाओं और गरीब तबकों को ऋण देने में राष्ट्रीयकृत बैंकों की तुलना में इनकी भूमिका कमजोर रही।
3. **उच्च शुल्क और चार्ज** – सेवाओं पर उँचे शुल्क लगाने के कारण गरीब वर्ग इनसे दूरी बनाए रखते हैं।
4. **नौकरी की असुरक्षा** – निजी बैंकों में कर्मचारियों पर लक्ष्य का दबाव अधिक होता है और नौकरी की स्थिरता कम होती है।

कोविड-19 और निजी बैंकिंग

कोविड-19 महामारी के दौरान निजी बैंकों ने डिजिटल बैंकिंग सेवाओं को और मजबूत किया। ग्राहकों को घर बैठे लेन-देन की सुविधा दी गई। हालाँकि, ऋण वसूली में सख्ती और छोटे उद्यमों को पर्याप्त राहत न देने के कारण इन्हें आलोचना भी झेलनी पड़ी।

भविष्य की दिशा

निजी बैंकों के सामने सबसे बड़ी चुनौती है—वित्तीय समावेशन और तकनीकी सुरक्षा। भविष्य में इन्हें ग्रामीण भारत की ओर ध्यान देना होगा और डिजिटल धोखाधड़ी से निपटने के लिए साइबर सुरक्षा पर निवेश बढ़ाना होगा। साथ ही, सरकार और रिज़र्व बैंक द्वारा निर्धारित सामाजिक जिम्मेदारियों को भी निभाना होगा।

निष्कर्ष

निजी बैंकों ने भारतीय बैंकिंग को आधुनिक, प्रतिस्पर्धी और तकनीकी रूप से उन्नत बनाने में बड़ी भूमिका निभाई है। उन्होंने ग्राहक सेवा, डिजिटल बैंकिंग और वित्तीय नवाचार को नया आयाम दिया। हालाँकि सामाजिक न्याय और ग्रामीण समावेशन के क्षेत्र में अभी लंबा सफर तय करना बाकी है।

राष्ट्रीयकृत बैंकों ने जहाँ वित्तीय समावेशन और सामाजिक परिवर्तन का आधार रखा, वहीं निजी बैंकों ने उस आधार को आधुनिकता और दक्षता से सुदृढ़ किया। दोनों ही क्षेत्र मिलकर भारतीय बैंकिंग प्रणाली को संतुलित और प्रगतिशील बनाते हैं।

भारतीय रिज़र्व बैंक का योगदान

परिचय

भारतीय रिज़र्व बैंक (RBI) की स्थापना 1 अप्रैल 1935 को हुई थी और यह भारत की मौद्रिक तथा वित्तीय प्रणाली का केंद्रीय स्तंभ है। इसे "बैंकों का बैंक" भी कहा जाता है। राष्ट्रीयकृत और निजी दोनों प्रकार के बैंकों के संचालन, नियमन और स्थिरता सुनिश्चित करने में RBI की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है।

मौद्रिक नीति का संचालन

RBI का प्रमुख दायित्व है मुद्रास्फीति को नियंत्रित करना और आर्थिक विकास के बीच संतुलन बनाना।

- **रेपो दर और रिवर्स रेपो दर** के माध्यम से RBI बैंकों की तरलता और ऋण वितरण को प्रभावित करता है।
- 2016 में **मौद्रिक नीति समिति (MPC)** की स्थापना के बाद से मुद्रास्फीति लक्ष्यीकरण और भी पारदर्शी हुआ।

बैंकों का नियमन और पर्यवेक्षण

RBI सभी बैंकों को लाइसेंस देता है और उनके संचालन की निगरानी करता है।

- **पूंजी पर्याप्तता अनुपात (CRAR)** सुनिश्चित करना।
- **गैर-निष्पादित परिसंपत्तियों (NPAs)** पर नियंत्रण हेतु निर्देश जारी करना।
- **विलय और पुनर्गठन** की प्रक्रिया में मार्गदर्शन देना।

वित्तीय समावेशन में भूमिका

RBI ने ऐसे कई प्रयास किए जिससे बैंकिंग सेवाएँ समाज के हर वर्ग तक पहुँच सकें:

- **प्रधानमंत्री जनधन योजना** के लिए नीतिगत सहयोग।

- बिजनेस कॉरिस्पॉन्डेंट मॉडल और लघु वित्त बैंक की स्थापना।
- डिजिटल भुगतान को प्रोत्साहन (UPI, NEFT, RTGS का विस्तार)।

वित्तीय स्थिरता और संकट प्रबंधन

- 2008 के वैश्विक आर्थिक संकट और 2020 के COVID-19 काल में RBI ने सक्रिय हस्तक्षेप किया।
- तरलता समर्थन और मोरेटोरियम नीति से बैंकिंग प्रणाली में विश्वास बनाए रखा।
- विदेशी मुद्रा भंडार (2022 में 600 अरब डॉलर से अधिक) के प्रबंधन ने रुपये की स्थिरता सुनिश्चित की।

प्रौद्योगिकी और नवाचार में योगदान

- UPI (Unified Payments Interface) की सफलता आज वैश्विक स्तर पर मान्यता प्राप्त कर चुकी है।
- डिजिटल लेन-देन के सुरक्षा मानकों (KYC, OTP आधारित प्रमाणीकरण) को लागू किया।
- साइबर सुरक्षा और फिनटेक कंपनियों के नियमन में भी महत्वपूर्ण योगदान।

सीमाएँ और चुनौतियाँ

हालाँकि RBI की भूमिका अहम है, लेकिन कुछ चुनौतियाँ बनी हुई हैं:

1. मुद्रास्फीति और विकास के बीच संतुलन कठिन।
2. NPAs और बैंकिंग धोखाधड़ी पर पूर्ण नियंत्रण न होना।
3. क्रिप्टोकॉरेसी और वैश्विक वित्तीय अस्थिरता जैसी नई चुनौतियाँ।

समापन टिप्पणी

भारतीय रिज़र्व बैंक ने देश की बैंकिंग व्यवस्था को स्थिर, आधुनिक और समावेशी बनाने में केंद्रीय भूमिका निभाई है। राष्ट्रीयकृत और निजी बैंकों की गतिविधियाँ जिस ढाँचे में संचालित होती हैं, उसका निर्माण और संरक्षण RBI ने ही किया है। भविष्य में भी, RBI की नीतियाँ भारतीय बैंकिंग व्यवस्था के विकास की दिशा तय करेंगी।

निष्कर्ष

प्रस्तावना

भारतीय बैंकिंग व्यवस्था का इतिहास केवल आर्थिक संस्थाओं का विकास नहीं है, बल्कि यह भारत की सामाजिक-आर्थिक संरचना और राजनीतिक इच्छाशक्ति का भी दर्पण है। प्राचीनकाल से चली आ रही वित्तीय परंपराएँ, औपनिवेशिक शासनकाल की औपचारिक संरचनाएँ, स्वतंत्रता-उपरांत राष्ट्रीयकरण की नीतियाँ, उदारीकरण के बाद निजी बैंकों का उदय, और अंततः भारतीय रिज़र्व बैंक (RBI) का मार्गदर्शन—ये सभी मिलकर इस यात्रा को विशिष्ट बनाते हैं। वर्तमान समय में भारतीय बैंकिंग केवल लेन-देन का माध्यम नहीं, बल्कि आर्थिक विकास, सामाजिक न्याय और राष्ट्रीय एकता का वाहक है।

राष्ट्रीयकृत बैंकों की भूमिका का पुनर्मूल्यांकन

1969 और 1980 में हुए दो राष्ट्रीयकरण केवल प्रशासनिक निर्णय नहीं थे, बल्कि यह ग्रामीण भारत और समाज के वंचित वर्गों को औपचारिक वित्तीय ढाँचे में शामिल करने का क्रांतिकारी कदम था।

1. **वित्तीय समावेशन** – राष्ट्रीयकरण ने बैंकिंग को महानगरों से निकालकर गाँव-गाँव तक पहुँचाया। शाखाओं की बेतहाशा वृद्धि हुई और पहली बार आम नागरिक बचत खाते, जमा योजनाएँ और ऋण सुविधाओं से जुड़ पाए।
2. **प्राथमिकता क्षेत्र ऋण** – कृषि, लघु उद्योग, शिक्षा और आवास को प्राथमिकता मिली। इसने हरित क्रांति और औद्योगिक विकास दोनों को गति दी।
3. **सामाजिक योजनाएँ** – गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों, ग्रामीण रोजगार योजनाओं और स्वरोज़गार पहलों में बैंकों ने सक्रिय भागीदारी निभाई।

4. **महिलाओं और कमजोर वर्गों का सशक्तिकरण** – विशेष ऋण योजनाओं और स्वयं सहायता समूहों के सहयोग से महिलाओं और अनुसूचित जाति/जनजाति समुदायों को वित्तीय रूप से आत्मनिर्भर बनाया गया।

हालाँकि, इन उपलब्धियों के साथ चुनौतियाँ भी थीं—राजनीतिक हस्तक्षेप, बढ़ते एनपीए, और तकनीकी पिछड़ापन। फिर भी, सामाजिक न्याय की दृष्टि से राष्ट्रीयकृत बैंकों का योगदान आधारभूत रहा है।

निजी बैंकों का उदय और प्रभाव

1991 के उदारीकरण ने निजी बैंकों को नई पहचान दी। इन्होंने बैंकिंग प्रणाली को प्रतिस्पर्धी, ग्राहक-केंद्रित और तकनीकी रूप से उन्नत बनाया।

- **तकनीकी नवाचार** – एटीएम, इंटरनेट बैंकिंग, मोबाइल ऐप्स और यूपीआई ने बैंकिंग को सुविधाजनक और तेज़ बना दिया।
- **ग्राहक सेवा** – निजी बैंकों ने सेवा-गुणवत्ता, ऋण स्वीकृति की गति और व्यक्तिगत ध्यान देकर ग्राहकों का विश्वास जीता।
- **पूँजी निर्माण** – विदेशी निवेश और पूँजी बाजार से बेहतर तालमेल स्थापित किया।
- **रोज़गार और कौशल विकास** – लाखों युवाओं को आधुनिक बैंकिंग कौशल में प्रशिक्षित किया।

इन उपलब्धियों के बावजूद निजी बैंकों की आलोचना भी हुई—शहरी झुकाव, लाभ-केन्द्रित दृष्टिकोण, उच्च शुल्क, और ग्रामीण समावेशन की कमी। फिर भी, डिजिटल युग में बैंकिंग की दिशा तय करने में इनका योगदान असाधारण है।

भारतीय रिज़र्व बैंक (RBI) का केंद्रीय योगदान

भारतीय रिज़र्व बैंक की भूमिका इस पूरी यात्रा में “मार्गदर्शक शक्ति” की रही है।

1. **मौद्रिक नीति और स्थिरता** – मूल्य स्थिरता, मुद्रास्फीति नियंत्रण और विकास को संतुलित किया।
2. **नियमन और पर्यवेक्षण** – बैंकों के संचालन की निगरानी कर पारदर्शिता और उत्तरदायित्व सुनिश्चित किया।
3. **संकट प्रबंधन** – 1991 के भुगतान संतुलन संकट, 2008 की वैश्विक मंदी, और कोविड-19 महामारी जैसे संकटों से देश को उबारा।
4. **डिजिटल नवाचार** – यूपीआई, आधार-आधारित भुगतान और फिनटेक सहयोग से भारत को डिजिटल बैंकिंग में वैश्विक अग्रणी बनाया।

आरबीआई ने हमेशा विनियमन और नवाचार के बीच संतुलन साधने का प्रयास किया है, जिससे बैंकिंग प्रणाली लचीली और सुरक्षित बनी रही।

चुनौतियाँ और सीमाएँ

भारतीय बैंकिंग व्यवस्था की यात्रा अभी अधूरी है। कई गम्भीर चुनौतियाँ बनी हुई हैं:

- **एनपीए संकट** – सार्वजनिक और निजी दोनों बैंकों में ऋण न लौटने की समस्या बनी हुई है।
- **वित्तीय समावेशन की असमानता** – ग्रामीण क्षेत्रों और कमजोर वर्गों तक बैंकिंग पहुँच अभी भी सीमित है।
- **साइबर सुरक्षा खतरे** – डिजिटल बैंकिंग के विस्तार के साथ धोखाधड़ी और हैकिंग के जोखिम भी बढ़े हैं।
- **वैश्विक वित्तीय अस्थिरता** – तेल कीमतों, विदेशी पूँजी प्रवाह और अंतरराष्ट्रीय नीतियों से भारतीय बैंकिंग प्रभावित होती रहती है।

भविष्य की दिशा

भारतीय बैंकिंग के लिए भविष्य की दिशा स्पष्ट है—**सामाजिक न्याय और तकनीकी नवाचार का संतुलन**।

1. राष्ट्रीयकृत बैंकों को आधुनिक तकनीक अपनाकर कार्यकुशलता बढ़ानी होगी।
2. निजी बैंकों को लाभ-केन्द्रित दृष्टिकोण से आगे बढ़कर वित्तीय समावेशन में योगदान देना होगा।
3. आरबीआई को डिजिटल सुरक्षा, वैश्विक सहयोग और नीति-नवाचार पर ध्यान देना होगा।
4. बैंकिंग प्रणाली को हरित वित्त, सतत विकास और सामाजिक उत्तरदायित्व के साथ जोड़ना होगा।

समग्र निष्कर्ष

भारतीय बैंकिंग व्यवस्था का विकास केवल वित्तीय संस्थानों की प्रगति नहीं है, बल्कि यह सामाजिक परिवर्तन, तकनीकी नवाचार और राष्ट्रीय एकता का प्रतीक है।

- राष्ट्रीयकृत बैंकों ने सामाजिक न्याय और वित्तीय समावेशन का आधार रखा।
- निजी बैंकों ने आधुनिकता, प्रतिस्पर्धा और तकनीकी नवाचार को आगे बढ़ाया।
- भारतीय रिज़र्व बैंक ने इस पूरी यात्रा में संतुलन, स्थिरता और विश्वसनीयता सुनिश्चित की।

आने वाले वर्षों में यह त्रिकोण—राष्ट्रीयकृत बैंक, निजी बैंक और आरबीआई—भारतीय अर्थव्यवस्था को वैश्विक मंच पर और अधिक सशक्त बनाने में निर्णायक भूमिका निभाएगा।

Works Cited

- Fielding-Singh, Priya. *Unequal Foodwork: Situating the Sociology of Feeding within Contemporary Sociocultural Transformation*. *Sociology Compass*, 2023.
- Mazzone, Ana Claudia, et al. "Perceptions about Home Cooking: An Integrative Review of Qualitative Studies." *Ciencia & Saude Coletiva*, vol. 25, no. 10, 2020, doi:10.1590/1413-812320202510.208920.
- Mills, Sarah D., et al. "Frequency of Eating Home-Cooked Meals and Potential Associations with Diet and Adiposity: A Cross-Sectional Analysis." *International Journal of Behavioral Nutrition and Physical Activity*, vol. 14, 2017, p. 109.
- Monteiro, Carlos A., et al. "The UN Decade of Nutrition, the NOVA Food Classification and the Trouble with Ultra-Processing." *Public Health Nutrition*, vol. 21, no. 1, 2018, pp. 5–17.
- Neuman, Nicklas, et al. "Childhood Memories of Food and Eating in Lower-Income Families: Implications for Dietary Interventions." *BMC Public Health*, vol. 21, 2021, p. 10533.
- PBS NewsHour. "Study Finds That Home-Cooking Disproportionately Burdens Mothers." *PBS NewsHour*, 4 Sept. 2014, www.pbs.org/newshour/health/study-finds-home-cooking-disproportionately-burdens-mothers.
- Polak, Rani, et al. "Expectations from a Home Cooking Program: Qualitative Analyses of Perceptions from Participants in 'Action' and 'Contemplation' Stages of Change." *Nutrients*, vol. 15, no. 9, 2023, p. 2082.
- Rathi, Nidhi, et al. "Perceptions of Nutritional Gatekeepers in Indian Urban Households: Cooking, Culture and Modernity." *Appetite*, vol. 188, 2025, p. 106627.
- Reicks, Marla, et al. "Impact of Cooking and Home Food Preparation Interventions among Adults: Outcomes and Implications." *Journal of Nutrition Education and Behavior*, vol. 46, no. 4, 2014, pp. 259–76.
- Self. "Why Home Cooking Isn't Possible for Everyone (and What We Can Do About It)." *Self*, 12 Mar. 2019, www.self.com/story/just-cook-more-isnt-universal-solution-healthy-eating.
- Time. "The Truth about Home Cooking." *Time Magazine*, 9 Oct. 2014.